International Journal of Engineering Research & Management Technology
ISSN: 2348-4039
November-2014 Volume 1, Issue-6
Email: editor@ijermt.org www.ijermt.org

पृथ्वीराज चौहान का मुहम्मदगौरी से प्रतिरोध

डॉ. रक्षा कँवर

इतिहास विभाग

जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ, विश्वविद्यालय

1177 ई. सोमेश्वर की मृत्यु के समय पृथ्वीराज तृतीय की आयु केवल 11 वर्ष की थी। भाग्यवश उसकी माता कर्पूरदेवी एक कुशल राजनीतिज्ञा थी । जिसने बड़ी योग्यता से अपने अल्पसंख्यक पुत्र के राज्य को संभाला। उसने अपने विश्वस्त अधिकारियों की सहायता से सम्पूर्ण राज्य व्यवस्थ को देखा और उसका दक्षता से संचालन किया। इन अधिकारियों में कदम्बवास दाहिमा राजपूत थ। जिसने पृथ्वीराज के राज्य के चारों और शत्रुओं के उत्पात्नार्थ सेनाएँ भेजी ।[1]

सैनिक कार्य के लिए कर्पूरदेवी ने एक सुयोग्य भुवनमल्ल की नियुक्ति सेनाध्यक्ष के पद पर की। भुनवमल्ल ने पृथ्वीराज को प्रारम्भिक कठिनाइयों के काल में सुरक्षित रखा। इन दोनों अधिकारियों के अतिरिक्त चन्देल, मोहिल आदि वंश के अनेक व्यक्ति थे जिन्होंने बड़ी श्रद्धा से अपनी सेवाऐं राज्य को अर्पित की। पृथ्वीराज अपनी माता के निर्देशन में रहकर अपनी प्रतिमा को अधिक सम्पन्न बना सका। सम्भवतः इस थोड़ी अवधि में ही उसने राज्यकार्य में दक्षता प्राप्त करने के साथ अपनी भावी कार्यक्रम की रूपरेखा भी बना ली थी, जो इसकी निरन्त विजय–योजनाओं से प्रमाणित होता है।[2]

पृथ्वीराज के भण्डानकों को परास्त किया । भण्डानक सतलल प्रानतों ने घुसपैठ करने वाली एक जाती थी जो मथुरा, भरतपुर और अलवर के आस–पास बढता ही जा रहा था। भण्डानको के विस्तार से आतंकित होकर पृथ्वीराज तृतीय ने उनकी वृत्ति को सदैव के लिए समाप्त कर दिया। अजमेर तथा दिल्ली जो उसके राज्य की दो प्रमुख धुरियाँ थी, वो एक राजनीतिक सूत्र में बंध गयी।[3]

अब चौहान राज्य की सीमाएं उत्तर में मुस्लिम सत्ता, दक्षिण–पश्चिम में गुजरात तथा पूर्व में चन्देलों के राज्यों से जा मिली थी।

पृथ्वीराज की दिग्विजय योजना समायोचित थी। इसके साथ–साथ वृहत् चौहान राज्य के प्रभाव को बनाये रखने के लिये भी दिग्विजय की योजना बनाना आवश्यक था। इसी तरह अपने सैनिकों और सामन्तों को सतत् रूप से अभियानों में लगाये रखने से पृथ्वीराज ने अपने युग में शक्ति सनतुलन की स्थिति को ठीक बनाये रखा ।

गजनवी शासकों का राज्य भारत के उत्तर पश्चिमी छोर तक विस्तृत था और वे सिन्ध, पंजाब तथा राजपूताना के पश्चिमी भाग में समय–समय पर घुसपैठ लिय करते थे। जब गौरी वंश के शासक प्रबल हुए तो इनका आधिपत्य गजनी पर भी जमने लगा । मोहम्मद गौरी को 1173 ई. में गजनी का गर्वनर नियुक्त किया। जिसने 1175 ई. में मुल्तान पर विजय प्राप्त कर ली। उसने अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये 1178 ई. में गुजरात लेने का भी प्रयत्न किया । जिसमें भीमदेव चालुक्य ने उसे परास्त कर दिया। इस पराजय से वह हताश नही हुआ, वरन् उसने अपनी स्थिति को शक्तिशाली बनाने के लिए सिंध और पेशावर पर अधिकार स्थापित कर लिया । 1881 ई. में सियालकोट के दुर्ग के निर्माण कराया ।

पृथ्वीराज तृतीय जो इस समय तक अपने दिग्विजय की योजना को साकार बना चुका था, एक वृहत् राज्य का स्वामी था । उसका राज्य सतलज नदी से झेलम तक और हिमालय के नीचे के भागों में लेकर आबू तक प्रसारित था । इस विशाल राज्य सीमा को सुरक्षा करना उसका उत्तरदायित्व हो चुका था । जिससे उसका सीधा सम्पर्क तुर्की राज्य–सीमा तक हो गया ।

इस प्रकार चौहान और तुर्क एक प्रकार से निकट के पडौसी और शत्रु निर्धारित हो चुके थे। ऐसी स्थिति में यद्यपि चौहान अपनी शक्ति को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहते थे तो उन्हें तुर्को को उत्तर–पश्चिमी सीमान्त भागों से निकाल देना आवश्यक था और यदि शाहबुद्दीन गौरी तुर्की सल्तनत को विस्तारित करना चाहता था तो उसके लिए दिल्ली और अजमेर लेना आवश्यक था, जो भारतीय सत्ता के प्रमुख फाटक थे।[4]

1178 से 1190 ई. का समय : इस प्रकार की नवीन राजनीतिक स्थिति ने 1178 ई. से 1190 ई. के बीच चौहान तुर्क छेड़छाड़ को जन्म दिया । इन्हीं सीमान्त संघर्ष की घटनाओं को पृथ्वीराज रासो ने चौहानों, शासकों और तुकों के बीच 21 बार मुठभेड़ होना लिखा है; जिसमें चौहानों को विजेता बताया गया है। नयनचन्द्र सूरी के ग्रन्थ हम्मीर महाकाव्य ने पृथ्वीराज द्वारा गोरी को सात बार परास्त करना लिखा है। पृथ्वीराज प्रबन्ध में आठ बार हिन्दू मुस्लिम संघर्ष का जिक्र करता है। राजशेखर की कृति प्रबन्धक कोष का लेखक बीस बार गोरी का पृथ्वीराज द्वारा केद कर मुक्त करना बताता है। चन्द्रशेखर द्वारा रचित सुर्जन चरित्र में इक्कीस बार, मेसतंग द्वारा प्रबंध चिन्तामणी में तेबीस बार गोरी को हराना उल्लेखित है।[5]

ग्रन्थों में वर्णित विजयों में अतिश्योक्ति हो सकती है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि दोनों शक्तियों की सीमाएं जो पंजाब, सिन्ध और राजपूताना में मिलती थी। इनके आपसी संघर्ष के कारण निरन्तर बनी रही। तुर्की परामवों का वर्णन मुस्लिम इतिहासकारों की तवारिखों में नहीं मिलता है क्योंकि तराइन के द्वितीय युद्ध में गौरी की विजय होना सिद्ध है।

तराइन का प्रथम युद्ध : 1191 ई. में मुहम्मद गौरी ने सैनिक तैयारी के साथ तबरहिन्दी (सरहिन्द) को लेने के लिए प्रस्थान किया जिसमें उसे सफलता मिली। किले के काजी जियाउद्दीन को सुपुर्द कर वह पृथ्वीराज से लड़ने के लिये आगे बढ़ा । दोनों फोजों का करनाल जिले के तराइन के मैदान में आ पहुंची। पृथ्वीराज ने गोरी की सेना के वाम और दक्षिणी पार्श्व को क्षति पहुंचायी, फिर भी तुर्की फौज लड़ती रही। इसमें गौरी बुरी तरह से घायल हो गया । उसके साथी सुल्तान को लेकर अपनी जान बचाकर भाग निकले। बची हुई सेना में भगदड़ मच गई और वे सभी इधर–उधर भटकते हुए गजनी जा पहुंचे। पृथ्वीराज ने सरहिन्द का दुर्ग काजी जियाउद्दीन से छीन लिया और काजी को बन्दी बनाकर अजमेर ले जाया गया । जहां से विपुल धन देकर उसे गजनी लौटा दिया गया । पृथ्वीराज तृतीय की यह उदारता चौहान साम्राज्य के पतन के लिये उत्तरदायी कारण बन गई। वहां का राजा मान हरिराज एक शिष्ट मण्डल उससे मिला । जिससे गौरी आपत्तिकाल में बड़ी सांत्वना मिली। यहीं से हिन्दू शासकों में परस्पर फूट के संकेत गौरी को मिले। जो भारत में मुस्लिम सत्ता स्थापित करने के लिये प्रेरित तथ्य बन गये।[6]

1191 ई. में प्रथम तराइन का युद्ध तुर्को की पराजय की एक महान घटना थी। सम्भवतः आक्रमणकारियों को इस प्रकार का पराभाव प्रथम बार अनुभव करना पडा था। तुर्को के विरूद्ध लड़े गये युद्धों में तराइन का प्रथम युद्ध हिन्दू विजय का गौरवपूर्ण अध्याय है।

परन्तु इस युद्ध में की गयी भूल भारतीय भ्रम का एक कलंकित पृष्ठ है। पृथ्वीराज ने यह कभी प्रयत्न नहीं किया कि इस विजय को एक स्थायी विजय बनाया जाये। विजय के आनन्द से मग्न होकर उसने पराजित सैनिकों को जो अस्त–व्यस्त अवस्था में थे, पीछा नही किया । कुछ लोग इसको पृथ्वीराज की उदारता मानते है। वैसे तो उदारता का प्रतिपादन हिन्दू शास्त्रों में मिलता है, परन्तु ऐसी उदारता का मेल न तो सैकिन नियमों से है न मुस्लिम युद्ध प्रणाली से। यह वास्तव में उसकी सारी भूल ही मानी जानी चाहिये।

पुनः आक्रमण की तैयारियां : शाहबुद्दीन गौरी को तराइन की पराजय का अत्यन्त क्षोम हुआ। गजनी पहुंचकर उसने सैनिक अधिकारियों को युद्ध स्थल से भाग निकले थे, सार्वजनिक रूप से अपमानित किया । उसने शीघ्र ही नये ढंग से युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। इस संबंध में वह इतना अधिक व्यग्र था कि उसके लिए आराम हराम था। सम्भवतः दूसरे मोर्चो के संबंध में कन्नोज के शासक जयचन्द्र से भी बातचीत का सिलसिला स्थापित कर रखा था। उसने अपनी सेना में तुर्क, ताजिक और अफगानों को सम्मिलित किया और उन्हें उपयुक्त शास्त्रों से सुसज्जित किया। जब उसके सैनिकों की संख्या 1,20,000 हो गयी तो वह लाहौर और मुल्तान के मार्ग से फिर उसी मैदान में आ डटा जहां उसे करारी हार मिली थी। हसन निजामी की कृति तबकात–ए नासिरी में उल्लेख मिलता है कि जब वह लाहौर पहुंचा तो उसने पृथ्वीराज के पास

एक राजदूत सकनुद्दीन के द्वारा यह संदेश भिजवाया कि अगर वह इस्लाम स्वीकार कर और गौरी की अधीन हो जो तो वह पुनः युद्ध नही करेगा । पृथ्वीराज ने प्रत्युत्तर मं यही कहलवा भेजा कि उसे अपने मुल्क लौट जाना चाहिये, अन्यथा उसकी भेंट युद्ध स्थल में होगी। मुहम्मद गौरी शत्रु को छल से विजय करना चाहता था, इसलिये उसने पुनः शेरखान नामक राजपूत को भेजकर उसने यह आश्वासन दिलाया कि वह युद्ध की अपेक्षा संधि करना अच्छा मानता है और इसलिये उसके संबंध में उसने एक दूत अपने भाई के पास भेजा है। ज्योंही उसे गजनी से आदेश प्राप्त हो जायेगा। वह स्वदेश लौट जायेगा। संधि के संबंध में उसने बताया कि पंजाब मुल्तान और सरहिन्द को लेकर वह सन्तुष्ट रहेगा।[7] गौरी का यह आश्वासन धूर्त, राजनीति एवं कुटनीति से अभिप्रेरित था।

तराइन का द्वितीय युद्ध : इन संधि वार्ता ने पृथ्वीराज को भुलावें डालने का काम किया । वह थोडी सी सेजना लेकर तराइन की ओर बढ़ा, शेष सेना जो स्कन्द के साथ थी वह उसके साथ न जा सकी। उसका दूसरा सेनाध्यक्ष उदयराज भी समय पर राजधानी से रवाना न हो सका । उसका मंत्री सोमेश्वर जो युद्ध के पक्ष में नही था । अतएव वह शत्रुओं से मिल गया । जो सेनाएं सीमान्त भागों पर लगी हुई थी उन्हें उसकी सेना के साथ मिलने के आदेश भिजवायें। पृथ्वीराज की सेना जो युद्ध स्थल में पहुंची, सन्धिवार्ता के भ्रम में अपने खेमे में रात भर बड़ा आनन्द मनाती रही। इसके विपरीत मुहम्मद गौरी ने शत्रुओं को अधिक भ्रम में रखने के लिये युद्ध शिविर में रात भर आग जलाये रखी और सेनिकों को शत्रुदल को घेरने की प्रणाली वाली चालों पर दूर–दूर स्थित कर दिया। ज्योंहि प्रभात हुआ कि अचानक तुर्को ने उन पर आक्रमण कर दिया। वास्तव में कोई नियमित युद्ध न रहा । चारों ओर भगदड़ मची गयी। पृथ्वीराज चौहान ने जो हाथी पर चढ़कर युद्ध में लड़ने चला था वह अब घोड़े पर बैठकर मैदान में लड़ता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ।[8]

युद्ध निर्णायक था। तुर्को ने भागती हुई राजपूत सेना का पिछा किया और उन्हें बिखेर दिया । हाँसी, सिरसा, कोहराम, अजमेर और दिल्ली पर तुर्को का आधिपत्य स्थापित हो गया । जहां तक पृथ्वीराज के अन्त का प्रश्न है उस संबंध में हमें विभिन्न मत दिखायी देते है। पृथ्वीराजरासो के अनुसार पृथ्वीराज का अन्त गजनी मं दिखाया गया है जहां उसे नेत्रहीन कर शब्दभेदी बाण चलाने की कोराल परीक्षा की गयी थी और जिससे मोहम्मद गौरी मारा गया।[9] किन्तु रासों के इस कथन की दृष्टि अन्य किसी समकालीन ग्रंथों से नहीं मिलती। हम्मीद महाकाव्य में पृथ्वीराज के कैद करना और अन्त में उसको मरवा देने का उल्लेख है। विरूद्धविधिविध्वंस में उसका युद्ध स्थल में काम आना लिखा है।

पृथ्वीराज प्रबन्ध का लेखक लिखता है कि विजयी शत्रु पृथ्वीराज को अजमेर ले गये और वहां उसे एक महल में बन्दी के रूप में रखा गया। इसी महल के समाने मुहम्मद गोरी अपना दरबार लगाता था

जिसको देखकर पृथ्वीराज को बड़ा दुःख होता था। एक दिन उसके मंत्री प्रतापसिंह ने पृथ्वीराज को दरबार में पेश किया । पृथ्वीराज ने अपने विश्वसनीय मित्र एवं दरबारी कवि चन्द्रबरदाई को बुलाया और सामने बैठे अपने शत्रु मोहम्मद गौरी शब्द भेदी बाण से अन्त करने का निश्चिय किया परन्तु मंत्री प्रतापसिंह ने इसकी सूचना गोरी को दे दी। पृथ्वीराज की परीक्षा लेने के लिए गौरी ने अपनी मूर्ति एक स्थान पर रख दी गयी जिसको अपने शब्दभेदी बाण से तोड़ दिया। अन्त में सुल्तान ने पृथ्वीराज को गड्ढे में फिंकवा दिया जहां पत्थरों की चोटों से उसका अन्त करवा दिया।[10]

अपने राज्यकाल के आरम्भ से लेकर अन्त तक वह युद्ध लड़ता रहा जो उसके एक अच्छे सैनिक और सेनाध्यक्ष होने को प्रमाणित करता है। तराइन के द्वितीय युद्ध के अतिरिक्त शेष सभी युद्धो में विजयश्री का भागी बना जो उसके शौर्य पराक्रम व राष्ट्र अभिमान को पुष्ट करते है। तराइन के द्वितीय युद्ध में वह पराजित हुआ परन्तु इसमें सन्देह नही कि युद्धस्थल मं वह बड़े लम्बे समय तक लड़ता रहा। बन्दी बन जाने पर भी उसने आत्मसम्मान को ध्यान में रखते हुए आश्रित शासक बनने की अपेक्षा मृत्यु को प्राथमिकता दी।[11]

सन्दर्भ सूची

1. शारदा हरबिलास, अजमेर हिस्टोरिकल एंड डेस्क्रिपटिव 1941 पृ.सं. 37
2. पाण्ड्या, मोहनलाल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग–प्रथम, वाराणसी 1906, पृ.सं. 322–23
3. दशरथ शर्मा, अली चौहान, डाइनेस्टी, पृ. 74–75
4. खतरगच्छ पट्टावली, पृ. 22
5. जयनायक पृथ्वीराज विजय सर्ग–12–13
6. पाण्ड्या, मोहनलाल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग–द्वितीय, वाराणसी 1908, पृ.सं. 214–223
7. दशरथ शर्मा पूर्व उद्धत पृ.सं. 18
8. चन्द्रबरदाई पृथ्वीराज रासो, दिल्ली 1972 पृ.सं. 103
9. हबीबुल्ला द फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम, रूल इन इण्डिया, इलाहाबाद, 1961 पृ. 268
10. डॉ. राजीव द्विवेदी–मध्यकालीन भारत के ऐतिहासिक निबंध जयपुर 2003, पृ. 16
11. सोमानी आर.बी. पृथ्वीराज चौहान एण्ड हिज टाइम्स, जयपुर, 1981 पृ.सं. 122

12. शिव शर्मा, अजमेर इतिहास और पर्यटन, अजमेर 2009 पृ.सं. 28